ISSN : 2454-308X
Volume : 03
Issue : 05

INNOVATIVE RESEARCH THOUGHTS
REFEREED | PEER REVIEWED

July - September 2017

सीखना : अवधारणा, प्रकृति, सीखने के प्रकार और सीखने को प्रभावित करने वाले कारक

Bala Devi
981/A, Dev Colony,
Rohtak (HR) .INDIA

ABSTRACT

पिछले दो दशक में बच्चों के बारे में मान्यताएँ और सीखने के बारे में हमारी समझ बदली है। ये तो स्पष्ट है कि हमारी सोच , मान्यताएँ और सकारात्मक माहौल सीखने को भी प्रभावित करते हैं। 'सीखना एक स्वाभाविक क्रिया है'। बच्चे स्वाभाविक रूप से कुछ चीजें स्वतः सीख लेते हैं। यानी जैसे समय के अनुरूप शारीरिक विकास स्वतः होता है वैसे मानसिक विकास में कुछ चीजों का सीखना भी स्वतः होता है , मिसाल के तौर पर बच्चे का मातृभाषा सीखना। पर इसका मतलब यह बिल्कुल नहीं है कि सब कुछ स्वतः ही सीख लेते हैं या सीख लेंगे। सीखने के सन्दर्भ में यह भी कहा जाता है कि 'सीखना' हर जगह होता रहता है या 'सीखना' आजीवन होता है। बच्चे जब अपने आसपास के सामाजिक एवं भौतिक वातावरण से और अलग-अलग कार्यों से जुड़ते हैं तो उनकी स्वाभाविक क्षमता में विकास होता है। पर यह कैसे होता है ? इस पर विचार करना होगा। साथ ही यह भी सोचना होगा कि क्या सभी तरह का सीखना एक समान होता है ? क्या हम सीखने के लिए सीखते हैं या कोई बाहरी प्रेरणा सीखने की ओर हमें धकेलती है ? और यदि बाहरी प्रेरणा हमें सीखने की ओर धकेलती है तो परिणाम किस तरह के होते हैं ? आइये विचार करें कि स्कूल के बाहर क्या-क्या सीखते हैं ? और इससे भी महत्वपूर्ण बात विचारणीय है कि ये सब कैसे सीख लेते हैं?

KEYWORDS : सीखना , अवधारणा, प्रकृति।

परिचय : ऐसा देखा गया है कि जब अभ्यास कार्य बच्चों के स्तर के अनुरूप स्वीकार्य चुनौतीयुक्त होता है तो बच्चे रूचि के साथ उसमें एंगेज होते हैं। सीखने के लिए विविध अभ्यास उतना ही जरुरी है जितना शरीर को चुस्त दुरुस्त रखने के लिए विविध तरह के व्यायाम। अभ्यास का सम्बन्ध सीखने से है और सीखने का सम्बन्ध रुचि से है, रुचि का सम्बन्ध विविधता से भी है, विविधता का सम्बन्ध जगत से जुड़ा है, जगत का सम्बन्ध जीवन से है और जीवन का सम्बन्ध सीखने से जुड़ा है। अभ्यास बहुत हद तक

आनन्द से भी जुड़ा है जबकि रटने का सम्बन्ध इस तरह का नहीं है। रटना उबाऊपन से जुड़ा है। रटने में एकरसता होती है। उचित अभ्यास जहाँ सोचने में व्यस्त रखता वहीं रटना यंत्रवत हो रहा होता है। अभ्यास जिज्ञासा को भी जीवित रखता है। रटने में जिज्ञासा का स्थान नहीं के बराबर रहता है। और न ही उसमें सोचने-विचारने के मौके होते हैं। हालाँकि कुछ लोग रटने की पैरवी करते हुए कहते हैं कि बिना रटे हुए कुछ भी भला होने वाला नहीं है। रटने को स्मृति से जोड़कर देखते हैं। मेरे ख्याल से रटना स्मृति का एक विकृत रूप है। स्मृति सीखे हुए चीजों का भविष्य में इस्तेमाल करने में मदद अवश्य करती है। किन्तु यदि स्मृति की बुनियाद रटने पर ही टिकी हो तो उस पर नया ढांचा तैयार नहीं हो पाता है। नए विचार नहीं आ पाते। जो हम जानते हैं उसमें वैचारिक विस्तार हो पाए। अपने अनुभवों में कुछ नई चीज जोड़ पाएँ। अनुभवों में नए विचार जुड़ना ही सीखना है।

स्कूल के बाहर **'सीखना':** सीखने का इन्फार्मल स्पेस यानी विद्यालय के अतिरिक्त घर या समुदाय में जहाँ कोई सीखने-सिखाने का पीरियड नहीं होता और न ही कोई करिकुलम होता है। लेकिन सीखना होता है। स्वाभाविक तरीके से सीखना होता है। सहज तरीके से सीखना होता है। बच्चा छोटे-छोटे अनुभवों से गुजरता है। यह अनुभवों से गुजरना ही सीखना है। वह अपने आसपास के लोगों के साथ खुलकर बातचीत करता है, दूसरों की बातों को सुनता है उस पर अपनी बेबाक प्रतिक्रिया भी देता है। बच्चे चाहे जिस सामाजिक सन्दर्भ से ताल्लुक रखते हों बचपन उसके जीवन का एक खुशनुमा हिस्सा होता है। साथ ही उसके व्यवहारिक जीवन में इन अनुभवों से गुजरने में खट्टे-मीठे दोनों अनुभव होते हैं। सब कुछ आनन्दवदायी ही हो ऐसा अपने आसपास दिखता नहीं है। स्वाभाविक दुनिया में बनावटी चीजों के लिए स्थान नहीं होता है और न ही होना चाहिए। घर पर बच्चे खेल का आनन्द उठाते हैं। खेल के नियमों को स्वयं बनाते हैं। कभी-कभी नियमों में परिवर्तन भी करते हैं। रोल प्ले करते हैं। स्वांग करते हैं। वहीं दूसरी ओर कभी-कभी दूसरे साथी के साथ धक्कामुक्की करना , बड़ों की डांट/व्यंग्यात्मक बातों को सुनना और उन्हें अपनी ओर आकर्षित करना , अपनी बात को मनवाने की कला भी सीख लेते हैं। यह भी उसके समाजीकरण का एक हिस्सा है। बच्चा जिस समाज में रहता है। उसमें बोली जाने वाली भाषा, रहन-सहन, तीज-त्यौहार, खान-पान, रीति-रिवाज, लेन-देन आदि बातों को सीखता है। यह औपचारिक शिक्षा या स्कूली शिक्षा का आधार बनता है। इसलिए घर को प्रथम पाठशाला भी कहा जाता है। पर यह जितना आसान समझा जाता है उतना आसान होता नहीं है। एक अभिभावक के तौर पर बच्चे को समझना थोड़ा कठिन लगता है। एक चार साल का बच्चा यदि किसी आगंतुक के आगे उल-जुलूल हरकत करना शुरू कर देता है तो उसे हम बच्चे के स्वभाव से न जोड़कर अपने स्टेटस से जोड़कर देखने लगते हैं या पड़ोस के बच्चों से जोड़कर देखने लगते हैं जो शान्त स्वभाव का है या तथाकथित अच्छे स्वभाव का है। दूसरी बात हर कोई बालमनोविज्ञान से परिचित नहीं होता कि बच्चे के उस हरकत/क्रियाकलाप को सही रूप में भाँप पाए। और यदि बालमनोविज्ञान के सिद्धान्तक को जानता भी है तो बच्चे के तात्कालिक हरकत/क्रियाकलाप के अनुरूप उसके स्वभाव के सिद्धान्त को जानना मुश्किल भरा काम लगता है। ऐसी स्थिति में एक अभिभावक या शिक्षिका की क्या भूमिका हो सकती है? सिवाय धैर्य के साथ बातचीत के।

स्कूल में 'सीखना': चार साल के सूर्यांश को ग्रीष्मावकाश का गृहकार्य मिला है जो कि दैनिक गृहकार्य/कक्षा कार्य का विस्तारित रूप है। इसमें एक पेज पर 'अ' दूसरे पर 'आ' इसी तरह 'ऋ' और 'औ' प्रत्येक पेज पर एक अक्षर अंकित है जिसे देख कर पूरे पेज में लिखना है। इसे लिखना न कहकर 'उतारना' कहना ही ज्यादा बेहतर होगा। अभी मस्तिष्क और हाथ का सम्बन्ध नहीं बन पाया है। लिहाजा उनका हाथ पकड़ कर उतरवाना पड़ता है। दूसरा उदाहरण तीसरी से पाँचवीं के बच्चे अक्सर बोर्ड पर लिखे हुए कुछ जोड़-घटाने के सवाल हल कर रहे होते हैं या शिक्षक द्वारा कापी के ऊपरी एक पंक्ति में कोई आदर्श वाक्य/सामान्य ज्ञान से सम्बन्धित बातें या किताब से बताए गए पैराग्राफ को सुन्दर अक्षरों में उतारने की कोशिश करते हुए बच्चे दिख जाते हैं। मुझे याद है जब मैं आठवीं कक्षा में था। मेरे गणित के गुरु जी बहुत अच्छे व मेहनती थे। आप मूलधन/ब्याज , प्रमेय आदि एक-एक सवाल बोर्ड पर हल करते थे। आप कुंजी के घोर विरोधी थे। वे सभी बच्चों से कहते थे कि कुंजी से मत उतारो। आप एक-एक सवाल बोर्ड पर समझाते थे और हम सब इसे उतारते थे। संयोग से विज्ञान भी आप ही पढ़ाते थे। विज्ञान की पाठ्यपुस्तक में जिक्र परिभाषाओं को मोटे हेडिंग से लिखवाना और नुकीली पेन्सिल से सम्बन्धित प्रयोगात्मक चित्र बनवाना गुरु जी का एक प्रकार का शौक था। गुरु जी की तरह मेरा और मेरे कई साथियों को प्रयोगात्मक चित्र बनाने का शौक बन गया साथ ही विज्ञान जानने का भ्रमित गर्व भी। इन उदाहरणों में विषय की प्रकृति के अनुरूप सीखना कहाँ-कहाँ पर हो रहा है इस पर विचार किया जा सकता है ?

वैसे स्कूल एक सोचा समझा गया वह जगह हैं जहाँ पर एक व्यवस्थित तरीके से सीखना होता है। किस वय वर्ग के बच्चे को क्या-क्या सीखना है ? कितना सिखाना है? कब सिखाना है? कैसे सिखाना है? इत्यादि बातों पर ध्यान देने की उम्मीद की जाती है। स्कूल , बच्चे की स्वाभाविक क्षमताओं में वृद्धि करने का सायास प्रयास करता है। जैसे बच्चा अपने घर की भाषा को जानता है। यह भाषा लोगों के सम्प र्क में वह स्वयं सीख लेता है। फिर भी स्कूल में भाषा की कक्षा होती है जिसमें भाषाई कौशलों को विकसित करने का सायास प्रयास किया जाता है। बच्चा अपने आसपास के चीजों/घटनाओं के बारे जानता है। जब कक्षा में बातचीत करने के दौरान उसे अभिव्यक्ति के मौके मिलते हैं। जब वह चीजों के बारे में अपने पूर्वज्ञान के आधार पर विश्लेषण करता है। और इस आधार पर कुछ नए विचार गढ़ने की कोशिश करता है तो इस क्रम में वह अपनी विचारों को एक व्यवस्थित क्रम में बाँधने की कोशिश करता है। उसके बारे में लिखने की कोशिश करता है। कुछ बनाने की कोशिश करता है। अपने अनुभवों को एक फ्रेम में रखने की कोशिश करता है। उसे विस्तार देने की कोशिश करता है। अनुभवों में विस्तार होना ही एक प्रकार का सीखना है। साथ ही इस बात का भी एहसास करना कि यह अनवरत चलने वाली प्रक्रिया है। हम ये तो मानते हैं कि सीखने की प्रक्रिया स्कूल के भीतर व बाहर दोनों जगहों पर चलती रहती है। पर इन दोनों जगहों में यदि सम्बन्ध रहे तो सीखने की प्रक्रिया पुष्ट होती है ।

सीखने को प्रोत्साहित करने के कारक :

- प्रश्न पूछने के मौके
- बातचीत करने की स्वतंत्रता

- चर्चा/बातचीत के मौके
- स्वयं करने के मौके
- आसपास की चीजों के साथ /लोगों के साथ अंतःक्रिया करने के मौके
- कल्पना करना
- अन्वेषण के मौके
- सकारात्मक माहौल
- सीखने वाले को इस बात का एहसास कराना कि वह भी महत्वपूर्ण है इत्यादि ।

अपने बचपन को याद करने पर या छोटे बच्चों के साथ घर पर बातचीत करते हैं तो बच्चे भी कितने सवाल पूछते हैं। कितनी जिज्ञासा होती है चीजों को जानने की ,छूने की, उसे हाथ में लेकर स्वयं कुछ करने की। हम सब एक हद तक ये सब करने की आजादी भी देते हैं। साथ ही बालपन के इस क्रियाकलाप का आनन्द भी लेते हैं। ऐसा देखा गया है कि उपरोक्त मौके जिस विद्यालय में पर्याप्त रूप से मिलते हैं वहाँ बच्चों के सीखने के स्तर में गुणात्मक वृद्धि हुई है।

सीखने को प्रभावित करने के कारक :

- शारीरिक स्वास्थ्य
- स्वयं की इच्छा
- सीखने के अवसर
- बच्चे के क्रमिक विकास व समझ पर विश्वास की कमी

अवधारणा की समझ : अवधारणा की समझ होना सीखने की प्रक्रिया का एक मूल हिस्सा है। जब हम अपनी आसपास की चीजों के बारे में या सीखने के बिन्दु के बारे में समझ बनाने की कोशिश करते हैं तो अवधारणा को समझना उसके केन्द्रस में होता है। और ये अवधारणाएँ हमारे लिए कोई और नहीं बना सकता, वे हमें ही बनानी पड़ती हैं। ध्यान देने वाली बात यह है कि किसी एक अवधारणा में कई अवधारणाएँ और भी निहित होती हैं , जिसे हम सब अक्सर नजरअंदाज कर देते हैं। मिसाल के तौर पर यदि हम जोड़ सिखा रहे हैं तो जोड़ की अवधारणा में संख्या ज्ञान , स्थानीयमान की समझ व प्रक्रिया के दौरान अनुमान लगाने का कौशल आदि बातें उसमें निहित होती हैं , जिसे जोड़ के पूर्व की अवधारणा भी कह सकते हैं। यदि हम बच्चों को इस प्रक्रिया से गुजरने के मौके दें तो बच्चे के पूर्व ज्ञान में इजाफा हो रहा होगा। उसके लिए छोटी-छोटी अवधारणा स्पष्ट हो रही होती हैं। यह स्पष्ट होना ही उसके समझ के स्तर में गुणात्मक वृद्धि होना है।

REFERENCES :

1. http://www.teachersofindia.org/hi/article
2. http://www.sansarlochan.in/history-of-modern-indian-education-committee-commission-in-hindi/#_-_1986-_National_Policy_on_Education
3. http://krisir.com
4. http://allgovtjobsindia.in/socialization-processes-and-definition-ctet-tet-notes/